संगीत शोध विमर्श

संपादक - डॉ. हरिओम सोनी

संगीत शोध विमर्ष

संपादक-
डॉ. हरिओम सोनी

प्रकाशक-
रागी पब्लिकेशन बीना (म.प्र.)

मुद्रक-
एन. डी. आफसेट प्रिंटर्स, सिविल लाइन सागर (म.प्र.)

ISBN- 978-81-931139-2-9

प्रथम संस्करण : 2017

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृ. क्र.
1.	शास्त्रीय और मौखिक परम्पराओं का समन्वय एक एतिहासिक दृष्टिकोण	डॉ. अवधेश प्रताप सिंह तोमर	1
2.	वादन तबला और पेशकार	डॉ. राहुल स्वर्णकार	6
3.	राग समय सिद्धान्त	दिवाकर कश्यप	13
4.	बुन्देलखंड की सांगीतिक परंपरा	प्रभाकर कश्यप	17
5.	आधुनिक युग में सांगीतिक परम्पराओं का संरक्षण	डॉ. विनोद कटारे	23
6.	ठुमरी गायन में उपज के विविध आयाम	दिनेश कुमार देवदास	28
7.	वर्तमान समय में संगीत के घरानों की उपयोगिता एवं सार्थकता	ओम्प्रकाश कटारे	34
8.	संगीत के अभ्यास एवं प्रदर्शन पर वैज्ञानिक उपकरणों का प्रभाव	डॉ. विनय बिन्दे	42
9.	लोकगीतों में अभिव्यक्त लोक जीवन	डॉ. शिम्पी	47
10.	सितार वादन के संदर्भ में अन्य भारतीय शास्त्रीय संगीत के वाद्यों का अंतःसम्बंध एवं उनका प्रभाव	कु. डॉली कश्यप	52
11.	भारतीय संगीत को संरक्षित करती शिक्षण परम्परा पर नवीन प्रवृत्तियों का प्रभाव	ऋचा रश्मि	58
12.	कथक नृत्य के साथ तबला संगति का प्रयोगात्मक पक्ष	हेमन्त शिन्दे	72
13.	गुरु शिष्य परंपरा एवं संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली	प्रियम चतुर्वेदी	79
14.	रूद्रवीणा-एक परिचय	कु. प्रतिभा सिंह	85
15.	फिल्म-संगीत में ठुमरी और दादरे का रंग	श्रुति मिश्रा	95
16.	परम्परागत एवं संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली : एक अध्ययन	कु. आकांक्षा पाल	103
17.	उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागांग वर्गीकरण	डॉ. आनन्द कुमार मिश्रा	106

ISBN- 978-81-931139-2-9

संगीत शोध संचयन

संपादक :
डॉ. राजेश कुमार शर्मा

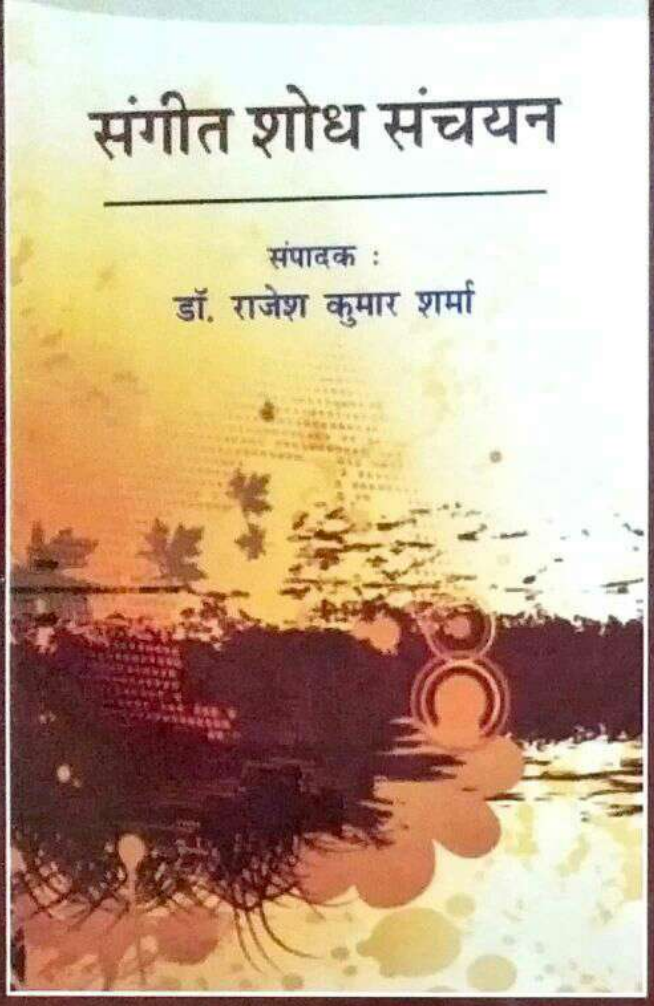

संजय प्रकाशन
प्रकाशक एवं वितरक
4378/4 डी, 209 जे.एम.डी. हाऊस अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
23245808, 41564415, 9313438740,
e-mail : sanjayprakashan@yahoo.in

₹ 950/-

ISBN 978-81-7453-371-5

Scanned with CamScanner

तबला साहित्य–कल्पना एवं सौंदर्य

डॉ. राहुल स्वर्णकार

ललित कलाओं के अंतर्गत रखी जाने वाली समस्त विधाओं में संगीत का अपना अलग महत्त्व है, जिसमें गायन, वादन, नृत्य तीनों को समान रूप से स्थान प्राप्त है। यहाँ मात्र तबला वादन से संबंधित क्षेत्र के बारे में चर्चा करेंगे। जैसा कि सर्वविदित है कि तबला वादन दो धाराओं में प्रवाहित है–संगति और एकल वादन, दोनों ही आपस में घनिष्ठ संबंध रखते हैं। केवल वादन या केवल संगत से कोई तबला वादक सौंदर्य या कल्पना को मूर्त रूप नहीं दे सकता। प्रत्येक कला का अपना एक समृद्ध इतिहास एवं परंपरा होती है, जिनके निर्वाह में किसी संगीतकार का सार संगीतिक जीवन व्यतीत होता है, किंतु इसका आशय यह कदापि नहीं लगाया जा सकता कि परंपराओं या शैलियों का पूर्णरूप से पालन किया जाए। कल्पना यदि अपना मूर्त रूप लेती है तो इसमें किसी-न-किसी विचारधारा का होना आवश्यक है। तबला और उससे जुड़ी वादन सामग्री का अपना लिखित और वृहद् साहित्य है, जिसके विचारात्मक परिपालन उपरांत साहित्यानुभूति, सौंदर्यानुभूति में बदल जाती है। "कला का संबंध विचारों के साथ मनुष्य के इंद्रिय बोध और भावों से भी है। विचारों की व्यंजना भाषा के बिना नहीं हो सकती" तब वे ललित कलाएँ जिनमें भाषा का प्रयोग नहीं होता, विचारधारा के रूप में नहीं गिनी जा सकतीं।[1] पूर्वजों एवं परंपराओं से प्राप्त रचनाओं (मौखिक अथवा लिखित) को जिस प्रकार के वर्णों का प्रयोग करके रचा गया है, उनको अतीत से प्राप्त भाषा शैली का अद्भुत समिश्रण करके प्रस्तुत किया गया है, जो कि यथार्थवादी शैली की ओर इंगित करती है। "यथार्थ का जितना गहरा संबंध अतीत से होता है, उतना ही भावी स्वप्न से भी। इस प्रकार वर्तमान, भविष्य और अतीत के साथ साहित्यकार का जितना घनिष्ठ संबंध होगा, उसकी रचना भी उतनी ही महान होगी।[2] शायद इसी

संगीत शोध विमर्श

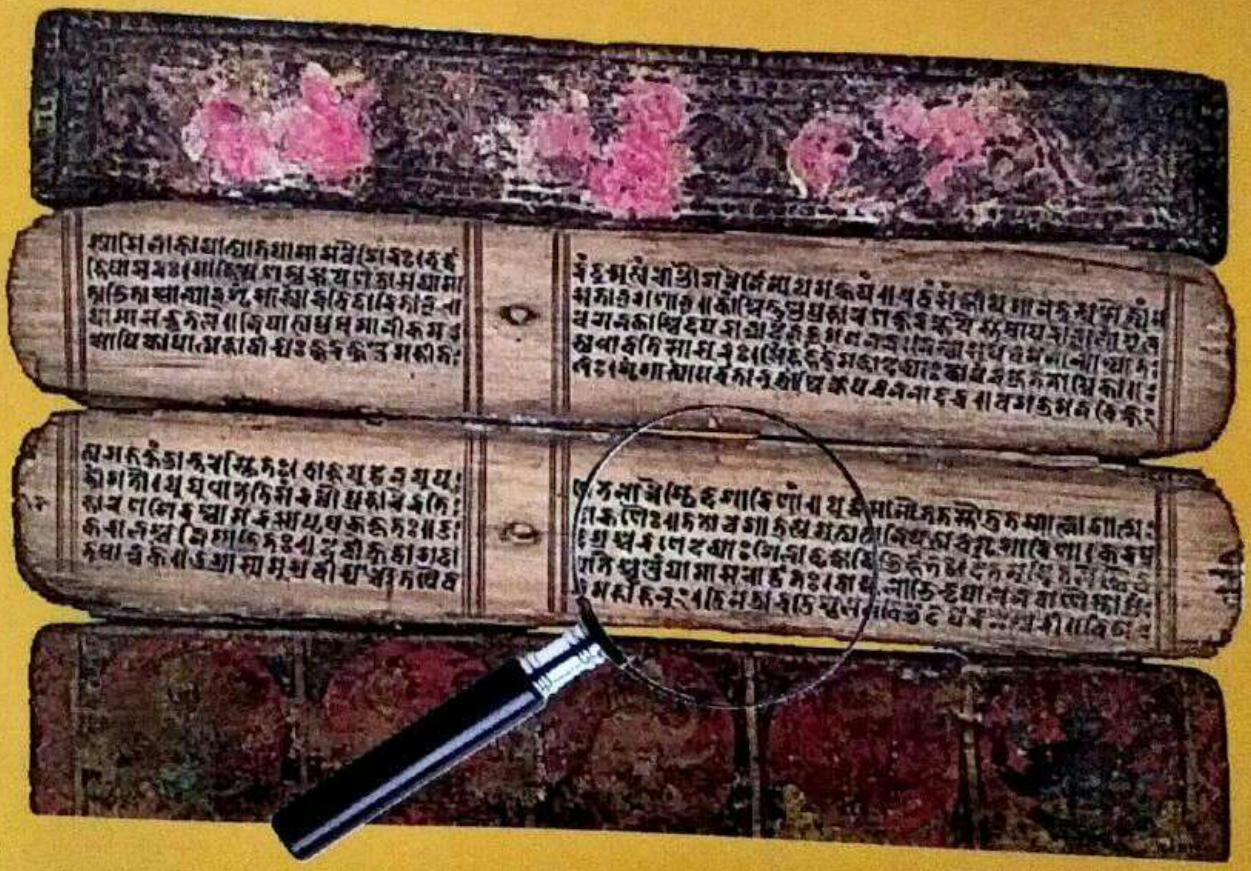

संपादक – डॉ. हरिओम सोनी

Scanned with CamScanner

वादन तबला और पेशकार

डॉ. रहुल स्वर्णकार सहा प्राध्यापक तब
संगीत विभाग, डॉ.हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्या

मनुष्य को स्वरों की समझ की क्षमता से अधिक लय और ताल जानकारी होना उसका प्रकृति प्रदत्त स्वभाव है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मनुष्य स्वर से पहले लय-ताल का ज्ञान हो चुका था। किसी भी विद्या गायन, वादन, का प्रारंभ सदैव विलंबित से और समापन द्रुत लय से ही होता है। ऐसा लय भाव का अपना गुण है। सामान्य श्रोताओं को विलंबित लय में दिलचस्पी होती है तबला एकल वादन के प्रारंभ में पेशकार से उत्पन्न ध्वनि और लयकारी आनन्द आसानी से होता है इसलिए पेशकार अपने समतुल्य अन्य विधाओं से ाक प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम है।[1] ललित कलाओं के अन्तर्गत जहाँ चित्रक मूर्तिकला का रचना पूर्ण होने के बाद ही उसका आनंद लिया जा सकता है। में गायन या वादन समाप्त होने के बाद उसका आनंद स्थूल रूप में समाप्त हो है।[2]

सामान्य भाषा का प्रयोग जिस प्रकार से बोलचाल में किया जाता है सामान्य व्यक्ति की सामान्य बातचीत की लय सामान्य और धीमी होती है। वि विराम चिन्हों का प्रयोग होता है ताकि सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त हो, अन्यथा लय में कही बात बिना किसी विराम आदि के भाषा में न्याय न हो पाना तथा का अर्थ स्पष्ट होने की संभावना न्यून हो जाती है। ठीक उसी प्रकार तब पेशकार के बोलों का धीमी गति में आघात से उसका वादन किया जाता है उसमें भी सौन्दर्य की अनुभूति हो। भाषा की तरह विराम, व्याकरण आदि बातों को पेशकार में दाये-बाये के दाव-गांस, अवग्रह इत्यादि के सुन्दर प्रयो पेशकार का प्रभाव अन्य किसी विधा की प्रारंभिक बंदिशों से सबसे तीव्र होत

तबले की प्रमुख वादन सामग्री किसी अन्य वाद्य को ध्यान में र निर्मित की गई है जिसमें अधिकांश रचनायें मृदंग, पखावज, ढोल, ढोलक, नक आदी से प्रेरित होकर बनाई गई हैं।[4] किन्तु पेशकार को तबले की खास रच रूप में माना जा सकता है जो उसकी स्वयं की शैली से निर्मित रचना है किसी वाद्य की बंदिश अथवा शैली के समान प्रतीत नहीं होती है। पेशकार को प्रधान शैली अथवा गायकी के अधिक निकट माना जा सकता है जिसमें को ध्यान में रखकर पेशकार वादन/वादन किया जाता है। गायन में जिस

ISBN- 978-81-931139-2-9

संगीत शोध संचयन

संपादक
डॉ. राजेश कुमार शर्मा

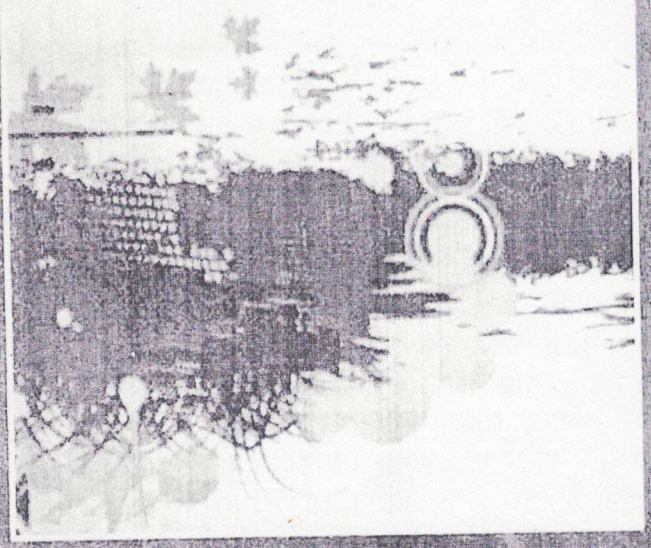

संजय प्रकाशन
प्रकाशक एवं वितरक
4378/4 डी, 209 जे.एम.डी. हाऊस अंसारी रोड,

₹ 950/-

ISBN 978-81-7453-371-5

तबला वादन के घराने एक तथ्यात्मक दृश्टिकोण

डॉ. राहुल स्वर्णकार*

भारतीय संगीत में तबला वादय का प्रचार जब से हुआ है तब से तबला अपनी अटखेलियों के गुण के कारण समूचे भारत के संगीत में अपनी चंचलता से प्रत्येक सुनकार का मन मोह ही लेता है। इसकी चंचलता को युवा और तहजीब, संस्कारी बनाने के लिए नीति निर्धारक लोगों ने अपनी परंपरा या सांगीतिक बंधनों के ताने बाने में इसे शामिल किया और अन्य विधाओं की भाँति तबले को भी घराने के नियमों की मुख्य धारा से जोड़ लिया। यहाँ से तबले का सफर भी अन्य विधाओं के समकक्ष, सुचारू रूप से चलने लगा। घरानों ने अपने सिद्धांत निर्धारित कर उन लोगों को समान अधिकार दिला दिया जो तात्कालिक समय में साहित्याभाव झेल रहे वादय को समकक्ष मनाने में आनाकानी का विचार मन में रखते थे। घरानों का चलन बढ़ने और लोगों की जरूरता को निभाने में तबला और उसका साहित्य बहु दिशाओं में अपना परचम लहराने लगा था। किन्तु इसके उदासीन परिणाम मिलने तब प्रारंभ हो गये जबकि प्रत्येक वादक कलाकार अपने आप को किसी ना किसी घराने का वंशज बताने लगे और सकारात्मक शिक्षा के अभाव में प्राप्त सबक या बंदिशों को अपने सृजनात्मक गुण से बजाकर उसे परंपरा में ढाल कर प्रस्तुति को रोचक बनाने लगे, जो घरानों का पूर्ण रूप से निर्वाह करने वाले लोगों को स्वीकार नहीं था। शायद इसी अस्वीकार की भेंट चढ़े कलाकारों को घरानेदार पद्धति होते हुए भी उन्हें घरानों के विरोधी दल निर्मित करने की जरूरत आन पड़ी और समूचे संगीत जगत के समक्ष यह प्रश्न रखा कि घराने की उपादेयता क्या है? क्या एक सकारात्मक शिक्षा कि पद्धति किसी कलाकार को उसका स्थान दिलाने में समर्थ है अथवा नहीं। इस पर विस्तार से चर्चा की जायगी भारतीय संस्कृति में घराना शब्द इसके जन्म से ही प्रचार में है। जो प्राचीन शब्द सम्प्रदाय से मिलता है।

भारतीय संस्कृति में सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग प्राचीन समय से होता रहा है जो संस्कृत से लिया गया है 'सम' का अर्थ पूर्ण रूप से, समान रूप से और "प्रदाय" का अर्थ है प्रदान करना अर्थात संप्रदाय का अर्थ पूर्ण रूप से प्रदान करना है। शारंगदेव ने भी संगीत रत्नाकर में सुसम्प्रदाय शब्द का प्रयोग किया है।[1] अर्थात सम्प्रदाय शब्द घराना से भी प्राचीन है। जिसमें नाद या स्वर संपूर्ण ब्रम्हांड को सम्मोहित करता है। हमारे इस सनातन संगीत में कुछ भौलिगत भिन्नताएं तो हो सकती है किन्तु घराना शब्द हमारी सनातन संस्कृति का प्रतीक नहीं है।[2]

किन्तु वर्तमान समय में घराने शब्द बड़े ही विवाद का विशय है। घराने का तात्पर्य यह है कि परंपराओं की उत्तरोत्तर वृद्धि हो, ऐसे में कोई दो कलाकार एक दूसरे की संपूर्ण छवि को कैसे प्राप्त कर सकता है। यदि नवीनीकरण घराने के भाव को बोझिल करती है तो संसार का प्रत्येक व्यक्ति एक जैसी छवि लेकर जन्मेगा और अंत तक एक ही छवि लेकर जीयेगा। ऐसे में श्रृंगारिकता के भाव की आवश्यकता समय के साथ समाप्त होने लगेगी। तबले में प्रयुक्त किये जाने वाले शुद्ध वर्ण प्राय: समस्त घरानों (खुले या बंद बाज) में समान रूप से प्रयोग किये जाते हैं। ज्ञातव्य है कि सीमित वर्णों के प्रयोग तथा एकल और संयुक्त वर्णों की निर्मिती से तबले का साहित्य निरंतर विकास कर रहा है। क्योंकि निर्धारित वर्णो के अतिरिक्त कोई ऐसी पद्धति नहीं है जिसके प्रयोग से कोई अभूतपूर्व बोलों का वादन किया जा सके। जब तबले का जन्म ही रंजकता प्रदान करने के लिये किया गया है तो इस रंजनता को लोग अपनी चार दीवारी में सीमित रखना क्यों चाहते हैं। दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान में क्या किसी खास घराने के कलाकार ही प्रदर्शन में निपुण होते हैं और अन्य घराने के कलाकार मात्र ज्ञान अर्जन से जुटे हुए हैं। प्रदर्शन से उनका सारोकार ही नहीं है। सदैव से ही कुछ ऐसे वादकों का वर्चस्व तबला वादन के क्षेत्र में रहा है जो स्वयं की क्षमताओं से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम रहे हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शिक्षा की तकनीक और माध्यमों का भी प्रदर्शन पर गहरा असर पढ़ता है। समस्त पक्षों को ध्यान में रखकर किया गया अभ्यास ही मंच पर अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम रहता है। इस स्थिति में किसी एक घराने की भौली में वादक अपने आप को क्यों स्थिर रखे। हाँ यह बात आव यक है कि उच्च स्तर तक पहुँचने में लगने वाला समय दीर्घ कालीन अवश्य होता है। बिना कठोर अवधि को पूर्ण किये कोई वादक कम से कम इस लायक तो नहीं हो सकता की वह समझदार लोगों में अपनी जगह बना सके। कोई भी कलाकार सबसे पहले अपने समूह में तथा कलाकारों के बीच में ही प्रसिद्ध होता है। बिना इसके अन्यत्र वह कहीं और अपनी जगह नहीं बना सकता है।

ध्वनि की विशेषता या गुण के समान ही एक वादक कलाकार दूसरे वादक के समान वादन नहीं कर सकता जिस तरह एक ही स्वर या वर्ण को अलग–अलग वाद्यों पर बजाया जाये तो प्रत्येक वाद्य पर उसकी ध्वनि अलग–अलग पहचानी जा सकती है।[3] ठीक उसी तरह वादन सामग्री समान होते हुए भी एक ही स्वर के दो तबलों पर वादन करने पर दोनों के काकू में भेद में अंतर अलग दिखाई देता है। अर्थात काकू अपनी वि ोशता के समान ही मनुष्य के चित्त को भी प्रभावित करती है। एक समय में एक ही सबक को एक ही परंपरा के दो अलग–अलग वादकों द्वारा प्रदर्शन हो तो भी दोनों में अंतर आसानी से समझा जा सकता है। ऐसे में किसी अमुक घराने की शैली हूबहू निर्वाह करने का दाबा करने वाले सज्जनों के मन और चित्त सदैव उसे अपनी मन

* सहायक प्राध्यापक, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)